सरोकार

किसान का प्रयास रहता है कि वह अधिकाधिक लाभ कमाए। वह गणित करता है कि एक अतिरिक्त सिंचाई करने में उसका खर्च कितना बैठेगा और बढ़ी हुई फसल से लाभ कितना मिलेगा। जैसे मान लीजिए 20 सिंचाई समेत लाल मिर्च के उत्पादन का खर्च 20,000 रुपए बैठता है जबकि लाल मिर्च 25,000 रुपए में बिकती है तो किसान लाल मिर्च का उत्पादन करेगा। इसके विपरीत यदि पानी महंगा होने के कारण उसी उत्पादन का खर्च 30,000 रुपए बैठे तो किसान लाल मिर्च के स्थान पर बाजरे जैसे किसी दूसरी फसल का उत्पादन करेगा जिसे पानी की कम जरूरत कम पड़ती है। पानी महंगा होगा तो किसान उसका कम उपयोग करेगा।

इस आयातित दाल में बहुत कुछ काला है

■ भारत डोगरा

विश्व में दालों की खपत सबसे अधिक भारत में है। हमारे देश की खाद्य व पोषण व्यवस्था में सदा दालों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यहां की कृषि भूमि विविध तरह की दालों के उत्पादन के लिए अनुकूल है तथा किसानों को दलहन की खेती का अच्छा परंपरागत ज्ञान है।

भारत अपनी दालों की जरूरतों को पूरा करने में निश्चय ही सक्षम है पर सरकारी स्तर पर दालों का उत्पादन बढ़ाने पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया अपितु हरित क्रान्ति के दौर में ऐसी नीतियां अपनाई गईं जिससे अनाज व दलहन की मिश्रित खेती की व्यवस्था अनेक महत्त्वपूर्ण स्थानों पर बुरी तरह टूट गई।

इसका व अन्य प्रतिकूल नीतियों का असर यह हुआ कि भारत दालों के आयात पर निर्भर होने लगा। हाल के 3-4 वर्षों को देखें तो एक वर्ष में 50 से 70 लाख टन दालों का आयात होता रहा है। सबसे अधिक दालों का आयात कनाडा, आस्टेऊलिया, म्यांमार, रूस व यूक्रेन से किया गया है। केवल कनाडा व आस्ट्रेलिया से कुल दलहन आयात का 56 प्रतिशत हिस्सा आयात हो रहा है। सबसे अधिक आयात पीले मटर या यैलो पीस का हो रहा है। पिछले वर्ष इसका 29 लाख टन आयात हुआ है। दूसरे नंबर पर लाल मसूर या रेड लेंटिल का आयात हुआ है। हरी मूंग का आस्ट्रेलिया से काफी आयात हो रहा है।

कनाडा व आस्ट्रेलिया में दालों की स्थानीय खपत नहीं के बराबर है। वहां दाल का उत्पादन मुख्य रूप से निर्यात करने के लिए किया जा रहा है। चूंकि वहां के स्थानीय लोग इस उत्पाद को नहीं खा रहे हैं अत: इसकी गुणवत्ता को ठीक से नहीं जांचा जा रहा है। पर अपने देश के लोगों के स्वास्थ्य के बारे में चिंतित कुछ प्रवासी भारतीयों की पहल पर जांच की गई तो पाया गया कि इन पर कुछ अति हानिकारक कैमिकल्स का अत्यधिक उपयोग हुआ है। इस कारण जब यह आयातित दाल भारत में बहुत सुरक्षित व पौष्टिक खाद्य मानकर खाई जाती है तो इससे हमारे देशवासियों के स्वास्थ्य के लिए गंभीर संकट उत्पन्न होते हैं।

विशेषकर ग्लाईफोसेट नामक रासायनिक दवा का अत्यधिक उपयोग स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत चिंताजनक माना जा रहा है। इसका अधिक उपयोग पहले खरपतवारनाशक के रूप में होता रहा है, पर बाद में इसका उपयोग तैयार फसलों में गीलापन कम करने व शुष्कपन बढ़ाने के लिए भी किया जाने लगा जिससे मशीनीकृत तौर तरीकों से उनकी कटाई में सहायता मिल सके।

इस रसायन के असर से शरीर की प्रोटीन व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो सकती है। इसके असर से भोजन से खनिज व विटामिन पौष्टिक तत्त्व ग्रहण करने की क्षमता कम हो सकती है। इतना ही नहीं, इससे कैंसर जैसी कुछ गंभीर बीमारियां से बचाव के लिए मानव शरीर की प्रतिरोधक क्षमता या इम्यूनिटी पर भी प्रतिकूल असर पड़ता है। इन गंभीर दुष्परिणामों के कारण इस पर कुछ देशों में प्रतिबंध भी लग चुका है।भारत में आयातित होने वाली दालों की जब स्वास्थ्य व पर्यावरण कार्यकर्ताओं के दबाव में जांच की गई तो इनमें ग्लाईफोसेट का असर बहुत अधिक पाया गया। पीले मटर व मसूर के अतिरिक्त आस्ट्रेलिया से आयातित मूंग में भी इसका असर बहुत अधिक पाया गया।अत: यह मांग उठाना जरूरी है कि खतरनाक आयातित दालों में ग्लाईफोसेट का उपयोग न हो तथा यदि हो रहा है तो उस पर लेबल लगाया जाए कि वह ग्लाईफोसेट प्रभावित दाल है। ग्लाईफोसेट प्रभावित दाल के सेवन से बचना चाहिए पर इसके लिए इस दाल पर लेबल लगाना जरूरी है। दाल आयातित करने से पहले यह सुनिश्चित करना चाहिए कि आयातित दाल स्वास्थ्य की दृष्टि से सुरक्षित है।

चूंकि हमारे देश में पर्याप्त दलहन के उत्पादन की क्षमता निश्चित तौर पर है, अत: सरकार को दाल के आयात पर निर्भरता बढ़ाने के स्थान पर किसानों को दलहन उत्पादन के लिए प्रोत्साहित करने की नीति अपनानी चाहिए। मात्र एक वर्ष में दलहन आयात के लिए जो लगभग 20000 करोड़ रुपए खर्च किए जा रहे हैं, वे यदि सीधे हमारे दलहन किसानों को तरह-तरह से प्रोत्साहित करने पर व उनकी सहायता करने पर, उन्हें दाल की बेहतर कीमत उपलब्ध करवाने पर खर्च किया जाए तो निश्चय ही बेहतर परिणाम मिलेंगे। केवल किसानों की भलाई ही नहीं होगी अपितु देशवासियों को स्वास्थ्य व पोषण की दृष्टि से कहीं बेहतर दाल मिल सकेगी। इतना ही नहीं, खेतों की मिट्टी का प्राकृतिक उपजाऊपन बनाए रखने के लिए भी यह उपयोगी है कि दलहन की खेती को, विशेषकर अनाज व दलहन की मिश्रित खेती को बढ़ाया जाए।

इसके बावजूद यदि सरकार बड़े पैमाने पर दाल आयात की नीति अपनाती है तो कुछ सवाल उठाना जरूरी है। दाल व खाद्य तेल का आयात निजी क्षेत्र के व्यवसायी करते हैं पर इसके लिए अनुकूल नीति सरकार तय करती है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि दाल आयात में हो रहे मोटे मुनाफे की खातिर राष्ट्रीय हित को तिलांजलि देकर दाल व खाद्य तेल के बड़े पैमाने पर आयात की नीति अपनाई जा रही है।

मोटे मुनाफे की खातिर राष्ट्रीय हित को तिलांजलि

हमारे देश में पर्याप्त दलहन के उत्पादन की क्षमता निश्चित तौर पर है, अत: सरकार को दाल के आयात पर निर्भरता बढ़ाने के स्थान पर किसानों को दलहन उत्पादन के लिए प्रोत्साहित करने की नीति अपनानी चाहिए। मात्र एक वर्ष में दलहन आयात के लिए जो लगभग 20000 करोड़ रुपए खर्च किए जा रहे हैं, वे यदि सीधे हमारे दलहन किसानों को तरह-तरह से प्रोत्साहित करने पर व उनकी सहायता करने पर, उन्हें दाल की बेहतर कीमत उपलब्ध करवाने पर खर्च किया जाए तो निश्चय ही बेहतर परिणाम मिलेंगे। केवल किसानों की भलाई ही नहीं होगी अपितु देशवासियों को स्वास्थ्य व पोषण की दृष्टि से कहीं बेहतर दाल मिल सकेगी।

सांस के जरिए मिलती असाध्य बीमारियों की सौगात

खतरे की घंटी है मौसम चक्र का बदलाव

■ योगेश कुमार गोयल

अचानक ज्यादा बारिश होना या एकाएक ज्यादा सर्दी या गर्मी पड़ना और फिर तूफान आना, पिछले कुछ समय से जलवायु परिवर्तन के ये भयावह खतरे बार-बार सामने आ रहे हैं और मौसम वैज्ञानिक स्वीकारने भी लगे हैं कि इस तरह की घटनाएं आने वाले समय में और भी जल्दी-जल्दी विकराल रूप में सामने आ सकती हैं। हालांकि कोई भी बड़ी प्राकृतिक आपदा आने के पश्चात अक्सर यही सुनने को मिलता है कि ये आपदाएं अचानक आती हैं लेकिन हकीकत यही है कि कुदरत अचानक कुछ नहीं करती बल्कि हमें बार-बार इसके संकेत, चेतावनी और संभलने के अवसर देती रहती है। लेकिन यह हमारी आदत में शुमार हो चुका है कि हम कोई बड़ा खतरा सामने आने तक प्रकृति की ऐसी चेतावनियों व संकेतों को नज़रअंदाज करते रहते हैं।

पिछले कुछ समय से देशभर में कुदरत जो कहर बरपा रही है, उसकी अनदेखी उचित नहीं और समय रहते अगर हम नहीं चेते तो आने वाले समय में इसके भयानक दुष्परिणामों के लिए हमें तैयार रहना होगा। पिछले कुछ महीनों के दौरान कहीं प्रचण्ड धूल भरी आंधियां, तो कहीं बेमौसम बर्फबारी, ओलावृष्टि, बादलों का फटना, भारी बारिश और आसमान से गिरती बिजली की वजह से भारी तबाही देखी गई और मौसम विभाग को बार-बार मौसम के बिगड़ते मिजाज को लेकर अलर्ट जारी करना पड़ा। मौसम का मिजाज अब किस कदर बिगड़ रहा है, उसका अनुमान इसी से सहज रूप से लगाया जा सकता है कि अब कई बार वर्षा ऋतु में आसमान में बादलों का नामोनिशान तक नज़र नहीं आता जबकि वसंत ऋतु में बादल झमाझम बरसने लगते हैं, सर्दियों में मौसम एकाएक गर्म हो उठता है और गर्मियों में अचानक पारा लुढ़क जाता है। अचानक ज्यादा बारिश होना या एकाएक ज्यादा सर्दी या गर्मी पड़ना और फिर तूफान आना, पिछले कुछ समय से जलवायु परिवर्तन के ये भयावह खतरे बार-बार सामने आ रहे हैं और मौसम वैज्ञानिक स्वीकारने भी लगे हैं कि इस तरह की घटनाएं आने वाले समय में और भी जल्दी-जल्दी विकराल रूप में सामने आ सकती हैं। हालांकि कोई भी बड़ी प्राकृतिक आपदा आने के पश्चात अक्सर यही सुनने को मिलता है कि ये आपदाएं अचानक आती हैं लेकिन हकीकत यही है कि कुदरत अचानक कुछ नहीं करती बल्कि हमें बार-बार इसके संकेत, चेतावनी और संभलने के अवसर देती रहती है। लेकिन यह हमारी आदत में शुमार हो चुका है कि हम कोई बड़ा खतरा सामने आने तक प्रकृति की ऐसी चेतावनियों व संकेतों को नज़रअंदाज करते रहते हैं।

पिछली दो सदियों में कई बार प्रकृति ने भारी तबाही मचाई है किन्तु विकास की अंधी दौड़ में मनुष्य ने सदैव इन तबाहियों से कोई सबक लेने के बजाय प्रकृति से छेड़छाड़ जारी रखी है। प्रकृति की ऐसी ही कुछ विनाशकारी प्रचण्ड लीलाओं की बात करें तो 25 नवम्बर 1839 को आंध्र प्रदेश के कोरिंगा में आए चक्रवाती तूफान ने तीन लाख लोगों की बलि ली थी और 25 हजार जहाज उस तूफान में बर्बाद हो गए थे। 1 नवम्बर 1876 को बैकरगंज तूफान में करीब दो लाख लोग मारे गए थे, वियतनाम में 1881 में आए हैपोंग तूफान ने तीन लाख लोगों को मौत की नींद सुला दिया था। 8 नवम्बर 1970 को बंगाल की खाड़ी से शुरू हुए भोला साइक्लोन नामक तूफान ने पूर्वी पाकिस्तान में कहर बरपाते हुए पांच लाख लोगों को मौत के मुंह में धकेल दिया था। 24 दिसम्बर 2004 को हिन्द महासागर में आए सुनामी तूफान ने दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशिया के देशों के तटवर्ती इलाकों में कहर बरपाया था, जिसका असर तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, केरल और पुडुचेरी में भी देखा गया था। इस तूफान में डेढ़ लाख से ज्यादा लोगों की मौत हुई थी। 1974 में दिल्ली में आए टोरनाडो तूफान के दौरान तो तूफानी हवाओं ने डीटीसी बस को भी उड़ा दिया था। 1990 व 1996 में आंध्र प्रदेश तथा 1998 में गुजरात के विनाशकारी तूफान और 1999 में उड़ीसा में आए प्रचण्ड चक्रवात में हजारों लोग काल का ग्रास बन गए थे और गांव के गांव मरघट में तब्दील हो गए थे।

अप्रैल माह में जब मौसम विभाग ने भविष्यवाणी की कि इस साल जून से सितम्बर के बीच सौ फीसदी बारिश होगी और देश में सूखे की कहीं कोई संभावना नहीं है, तब हर कोई खुशी से उछल रहा था लेकिन किसी ने यह जानने-देखने की जरूरत महसूस नहीं की कि इस प्रकार की भविष्यवाणियों या पूर्वानुमानों का पूर्व में क्या हश्र होता रहा है? गत वर्ष भी सामान्य बारिश के पूर्वानुमान लगाए गए थे किन्तु देश के 640 जिलों में से महज 40 फीसदी में ही सामान्य बारिश हुई थी, करीब 40 फीसदी जिले सूखे की चपेट में रहे जबकि 15 फीसदी जिलों में भयानक बाढ़ की स्थिति बन गई थी। आंधी-तूफान को लेकर तो मौसम विभाग का कहना भी है कि इसकी सटीक भविष्यवाणी संभव नहीं है और इसे समय पर सभी लोगों तक पहुंचाना बहुत मुश्किल है। वैसे प्रकृति हमें बार-बार अपना रौद्र रूप दिखाकर चेतावनी देती रही है कि यदि हमने प्रकृति के साथ अंधाधुंध खिलवाड़ बंद नहीं किया तो उसके कितने घातक परिणाम होंगे लेकिन विडम्बना ही है कि प्रकृति का प्रचण्ड रूप देखने के बावजूद हम हर बार प्रकृति की इन चेतावनियों को नज़रअंदाज कर खुद अपने विनाश को आमंत्रित करते रहे हैं।

विकास की अंधी दौड़ में अब वायुमंडल में कार्बन मोनोक्साइड, नाइट्रोजन, ओजोन और पार्टिक्यूलेट मैटर के प्रदूषण का मिश्रण इतने खतरनाक स्तर पर पहुंच चुका है कि सांस के जरिये हमें असाध्य बीमारियों की सौगात मिल रही है। सीवरेज की गंदगी स्वच्छ जल स्त्रोतों में छोड़ने की बात हो या औद्योगिक इकाईयों का अम्लीय कचरा नदियों में बहाने की अथवा सड़कों पर रेंगती वाहनों की लंबी-लंबी कतारों से वायुमंडल में घुलते जहर की या फिर सख्त अदालती निर्देशों के बावजूद खेतों में जलती पराली से हवा में घुलते हजारों-लाखों टन धुएं की, हमारी आंखें तब तक नहीं खुलती, जब तक प्रकृति का बड़ा कहर हम पर नहीं टूट पड़ता। अधिकांश राज्यों में सीवेज ट्रीटमेंट और कचरा प्रबंधन की कोई पुख्ता व्यवस्था नहीं है। सरकारी तौर पर कितने ही व्यापक स्तर पर स्वच्छता अभियान का प्रचार-प्रसार किया जाता रहा हो किन्तु वास्तविकता यही है कि हम आज भी अपने आसपास के वातावरण को साफ-सुथरा बनाए रखने में कोई दिलचस्पी नहीं रखते। जागरूकता अभियानों के बावजूद हमें अपने घर या दुकान का कूड़ा-कचरा सड़कों पर फेंकने में ही खुशी मिलती है। सड़कों पर या जहां भी हम खड़े हैं, वहीं खड़े-खड़े थूकते रहने की लोगों की आदत में कोई बदलाव नहीं आया है।

कुछ दिनों पहले उत्तर प्रदेश में पीलीभीत में तूफान मानवीय गलतियों की ही वजह से एक साथ कई गांवों पर कहर बनकर टूटा, जब वहां कई किसानों ने अपने खेतों को अगली फसलों के लिए खाली करने हेतु पराली में आग लगाई और तूफानी आंधी के दस्तक देते ही पराली से निकली आग आसपास के दर्जनभर गांवों पर तबाही बनकर बरसी। बड़ी आपदाएं आने के बाद सरकारों द्वारा मुआवजे के सहारे पीड़ितों के आंसू पोंछने की कोशिशें की जाती हैं किन्तु ऐसी कोई पुख्ता व्यवस्था नहीं हो पाती कि ऐसी आपदाओं के समय जान-माल के नुकसान की संभावना न्यूनतम रहे।

पानी का मूल्य तो अदा करना ही होगा

नीति आयोग की चेतावनी दिल्ली का भूमिगत जल दो वर्ष में समाप्त हो जायेगा

■ डॉ. भरत झुनझुनवाला

नीति आयोग ने चेतावनी दी है कि दिल्ली का भूमिगत जल दो वर्ष में समाप्त हो जायेगा। तापमान बढ़ने से वर्षा का पानी भूमि में कम ही समा रहा है। साथ-साथ दिल्ली की जनसंख्या बढ़ने से पानी की खपत बढ़ रही है। भूमिगत जल का स्तर नीचे गिर रहा है और शीघ्र ही यह समाप्त हो जायेगा। यह परिस्थिति दिल्ली तक सीमित नहीं है। बंगलोर तथा हैदराबाद जैसे महानगरों में भी 2020 तक पानी समाप्त होने या उसकी उपलब्धि बहुत कम हो जाने की संभावना है। यह परिस्थिति विशेषकर चिंताजनक है। चूंकि यूरोपीय महानगरी एम्सटरडैम की तुलना में पानी की प्रति व्यक्ति उपलब्धता दिल्ली में ज्यादा है। चीन की जनसंख्या हमसे सवाया है फिर भी वह देश हमारी तुलना में 28 प्रतिशत कम पानी का उपयोग कर रहा है। हमारे पास पर्याप्त पानी है परन्तु गलत नीतियों के कारण हम संकट में अनायास ही पड़ रहे हैं।

लगभग 80 प्रतिशत पानी का उपयोग खेती में किया जाता है। बाजरा और रागी जैसी फसलें बिना सिंचाई के ही पैदा हो जाती हैं। गेहूं और चावल जैसी फसलों को एक या दो पानी दे दिया जाए तो ठीक ठाक हो जाती है। लेकिन अंगूर, गन्ने और लाल मिर्च को 15 से 20 बार पानी देना होता है। इन फसलों के उत्पादन में पानी का अधिक उपयोग होने से कई राज्यों में संकट पैदा हो रहा है। कर्नाटक में अंगूर, उत्तर प्रदेश में गन्ना और राजस्थान में लाल मिर्च की खेती के लिए हम पानी का भारी मात्रा में उपयोग कर रहे हैं।

किसान का प्रयास रहता है कि वह अधिकाधिक लाभ कमाए। वह गणित करता है कि एक अतिरिक्त सिंचाई करने में उसका खर्च कितना बैठेगा और बढ़ी हुई फसल से लाभ कितना मिलेगा। जैसे मान लीजिए 20 सिंचाई समेत लाल मिर्च के उत्पादन का खर्च 20,000 रुपए बैठता है जबकि लाल मिर्च 25,000 रुपए में बिकती है तो किसान लाल मिर्च का उत्पादन करेगा। इसके विपरीत यदि पानी महंगा होने के कारण उसी उत्पादन का खर्च 30,000 रुपए बैठे तो किसान लाल मिर्च के स्थान पर बाजरे जैसे किसी दूसरी फसल का उत्पादन करेगा जिसे पानी की कम जरूरत कम पड़ती है। पानी महंगा होगा तो किसान उसका कम उपयोग करेगा। पानी सस्ता होगा तो किसान उसका अधिक उपयोग करेगा।

अपने देश में नहर का पानी बहुत सस्ता है। किसान द्वारा क्षेत्र के हिसाब से एक बार मूल्य अदा कर दिया जाए तो वह कितनी भी बार सिंचाई कर सकता है जैसे अनलिमिटेड थाली का एक बार मूल्य अदा करने के बाद आप जितनी चाहे उतनी रोटी खा सकते हैं। यह व्यवस्था किसान को पानी की अधिक खपत करने वाली फसलों की खेती करने की प्रेरणा देती है चूंकि उसे पानी का मूल्य उतना ही देना है चाहे एक सिंचाई करे या 20 सिंचाई। इसी प्रकार किसान फ्री या सस्ती बिजली उपलब्ध से ट्यूबवेल से पानी निकालना सस्ता हो गया है। वह पानी की अधिक खपत करने वाली फसलों की खेती कर रहा है।

प्रश्न उठता है कि पूर्व में ही मर रहे किसान पर पानी के दाम बढ़ा कर अतिरिक्त बोझ डालना उचित होगा क्या? इस समस्या का उपाय है कि पानी की कम खपत करने वाली फसलों का समर्थन मूल्य बढ़ा दिया जाए। तब उत्तर प्रदेश के किसान के लिए गन्ने के स्थान पर गेहूं और राजस्थान के किसान के लिए लाल मिर्च के स्थान पर बाजरे की खेती करना लाभप्रद हो जाएगा चूंकि गन्ने और लाल मिर्च की खेती में पानी का मूल्य ज्यादा अदा करना होगा जबकि गेहूं और बाजरे की खेती में दाम ऊंचे मिलेंगे।

पानी के संकट का दूसरा कारण पानी का भंडारण बड़े बांधों में करने की पालिसी है। टिहरी बांध के पीछे 45 किलोमीटर लम्बा तालाब बन गया है। इस पानी पर धूप की किरणें पड़ने से पानी का वाष्पीकरण होता है। अनुमान है कि 10 से 15 प्रतिशत पानी इस प्रकार हवा में उड़ जाता है। इसके बाद नहर से पानी को खेत तक पहुंचाने में वाष्पीकरण तथा रिसाव होता है। मेरा अनुमान है कि 25 प्रतिशत पानी की बर्बादी हो जाती है। इस समस्या का उपाय है कि पानी का भंडारण जमीन के ऊपर करने के स्थान पर जमीन के नीचे किया जाए। आपने ट्यूबवेल से पानी निकलता देखा होगा। जमीन के नीचे पानी के तालाब होते हैं। ट्यूबवेल से इन्हीं तालाबों से पानी निकाला जाता है। जमीन के नीचे के इन तालाबों की क्षमता बहुत ज्यादा होती है। सेन्ट्रल ग्राउन्ड वाटर बोर्ड के अनुसार उत्तरप्रदेश के इन जमीनी तालाबों में 76 बिलियन क्यूबिक मीटर पानी का भंडारण किया जा सकता है जो कि टिहरी की 2.6 बिलियन क्यूबिक मीटर की क्षमता से 30 गुना है। जमीनी तालाबों में पड़े पानी का वाष्पीकरण नहीं होता है। इनसे पानी को मनचाहे स्थान पर ट्यूबवेल से निकाला जा सकता है। नहर बनाने की जरूरत नहीं पड़ती है। नहर से पानी को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने में वाष्पीकरण तथा रिसाव नहीं होता है। हां पानी निकालने में बिजली का खर्च जरूर बढ़ता है परन्तु इस बिजली का मूल्य कम होता है और बचाए गए पानी का मूल्य बहुत अधिक होता है। इसलिए इस खर्च हमें स्वीकार करना चाहिए।

बड़े बांधों में नदी का पानी रुक जाने से बाढ़ कम आती है, जमीन पर पानी कम फैलता है, जमीनी तालाबों में पानी का पुनर्भरण कम होता है, और ट्यूबवेल से सिंचाई भी कम होती है। जैसे यदि यमुना के ऊपर हथनीकुंड आदि में बने पराज को हटा दिया जाये तो, बरसात के समय जमुना का पानी धड़धड़ाकर दिल्ली के चारों तरफ फैलेगा और आसपास के भूमिगत जल का पुनर्भरण हो जायेगा। हां प्रकृति की इस देन को लागू करने के लिए हमें शहर इस प्रकार बसाने पड़ेंगे कि बाढ़ के समय आम आदमी को परेशानी ना हो। इनके मकानों का स्तर जमीन से ऊंचा करना होगा।

सत्तर फीसदी पानी पीने लायक नहीं

जल गुणवत्ता सूचकांक में 122 देशों की सूची में भारत 120वें स्थान पर

■ शर्मिला पाल

आजादी के सत्तर सालों बाद भी देश में पचहत्तर फीसदी घरों में पीने का पानी उपलब्ध नहीं है; सत्तर फीसदी पानी पीने लायक ही नहीं है। शहरों-कस्बों में जिनके पास पर्याप्त पैसा है, वे खरीद कर बोतलबंद पानी पीते हैं। लेकिन भारत जैसे गरीब देश में हर कोई बोतल बंद पानी खरीद नहीं सकता। तो क्या वे प्रदूषित पानी पीने को अभिशप्त हैं? देश में जल संकट की समस्या आने वाले कुछ वर्षों में और अधिक विकराल हो सकती है। हाल ही में जारी नीति आयोग की जल-प्रबंधन रिपोर्ट के मुताबिक, देश के साठ करोड़ लोग पानी की गंभीर कमी से जूझ रहे हैं; स्वच्छ पेयजल उपलब्ध न होने से प्रति वर्ष जल-जनित बीमारियों की वजह से करीब दो लाख मौतें हो रही हैं। अचरज की बात है कि आज़ादी के सत्तर सालों बाद भी पचहत्तर फीसदी घरों में पीने का पानी मुहैया नहीं है। मतलब यही है कि जल संकट के प्रति लोकप्रिय कल्याणकारी सरकारों का नजरिया उदासीन रहा है।

जिम्मेदारी सरकारों की

जल संकट कोई नई समस्या नहीं है। देश के जागरूक सामाजिक संगठन दशकों से जल संकट का मुद्दा उठाते रहे हैं, लेकिन किसी सरकार ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। नतीजा है कि देश में सत्तर फीसदी पानी पीने लायक ही नहीं है। अगर चुनी हुई सरकारें नागरिकों को शुद्ध पेयजल भी मुहैया नहीं करा सकतीं तो उनकी जवाबदेही पर सवाल उठना स्वाभाविक है। भारत में फिलहाल प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता 1544 घन मीटर है। इस स्थिति को जल की कमी की चेतावनी के रूप में देखा जाता है। अगर यह उपलब्धता 1000 घन मीटर से नीचे आ जाए तो जल संकट माना जाता है। देश की आबादी जिस रफ्तार से बढ़ रही है, उसे देखते हुए आने वाले एक दशक में भारत जल संकट-ग्रस्त की श्रेणी में आ जाएगा। इसकी एक बड़ी वजह भूजल का बेतरतीब दोहन है। जल राज्य सूची के अंतर्गत आता है। लिहाज़ा, राज्य सरकारों को जल के महत्व के प्रति जागरूकता अभियान चलाना चाहिए। दरअसल, जल संकट प्राकृतिक और मानव-निर्मित, दोनों है। जल का समुचित प्रबंधन करके हम जल संकट का समाधान निकाल सकते हैं। सरकार को जल सम्बंधी राष्ट्रीय कानून बनाने पर भी विचार करना चाहिए। किसी ने कहा भी है कि पानी तीसरे विश्व युद्ध का कारण बन सकता है। लिहाज़ा, हमें पानी की बर्बादी को रोकने के उपायों पर भी ध्यान देना होगा।

गहराता संकट

देश में 4.11 करोड़ लोगों को पीने का साफ व सुरक्षित पानी नहीं मिलता। नीति आयोग ने देश में बढ़ते पेयजल संकट पर गहरी चिंता जताई है। आयोग के मुख्य कार्यकारी अधिकारी अमिताभ कांत ने कहा है कि आयोग के संयुक्त जल प्रबंधन सूचकांक में लगभग 60 फीसदी राज्यों का प्रदर्शन बेहद लचर रहा है। इनमें उ.प्र., बिहार, राजस्थान और हरियाणा जैसे राज्य शामिल हैं, जहां देश की आबादी के आधे लोग रहते हैं। इस मामले में गुजरात का प्रदर्शन सबसे बेहतर रहा है। उसके बाद म.प्र. व आंध्र प्रदेश का स्थान है। आयोग का कहना है कि जिन राज्यों में जल प्रबंधन ठीक नहीं है, वहीं से कुल कृषि उत्पादन का 20-30 फीसदी आता है। अमिताभ कांत कहते हैं, देश के समक्ष फिलहाल पूरी आबादी को पीने का साफ व सुरक्षित पानी मुहैया कराना ही सबसे बड़ी चुनौती है। पर्यावरण विशेषज्ञों का कहना है कि सरकार को अभी से इस संकट की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए जल संरक्षण के उपायों पर ज़ोर देना होगा। ऑल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ हाइजीन एंड पब्लिक हेल्थ के पूर्व निदेशक के.जे. नाथ कहते हैं, सरकार को बारिश के पानी का संरक्षण अनिवार्य बनाना होगा। आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों ने इसके ज़रिए संकट पर काफी हद तक काबू पा लिया है। पर्यावरणविद् कल्याण रुद्र कहते हैं, पानी के संरक्षण की दिशा में तुरंत ठोस पहल न की गई तो आने वाली पीढ़ियों के समक्ष पीने के साफ पानी का गंभीर संकट पैदा हो जाएगा।

जल सूचकांक में धड़ाम

नीति आयोग की रिपोर्ट देखने के बाद यह स्पष्ट है कि भारत अपने इतिहास के सबसे भयावह जल संकट से गुजर रहा है और हालात को इस कदर बिगाड़ने में अकर्मण्य सरकारी तंत्र के साथ हमारी भी बड़ी भूमिका है। इससे पहले कि बहुत देर हो जाए, सरकार के साथ-साथ हमें भी अपने-अपने स्तर पर सक्रिय हो जाने की जरूरत है। नीति आयोग के जल प्रबंधन सूचकांक के अनुसार, देश के तकरीबन 60 करोड़ लोग पानी की भयंकर कमी से जूझ रहे हैं, और दो लाख लोग हर साल सिर्फ इस कारण मर जाते हैं कि उनकी पहुंच में पीने योग्य पानी नहीं होता। 75 फीसदी घरों में पीने का पानी नहीं है और देश का करीब 70 फीसदी पानी पीने योग्य नहीं है। जल गुणवत्ता सूचकांक में 122 देशों की सूची में भारत 120वें स्थान पर है। रिपोर्ट आगाह करती है कि समुचित प्रबंधन न हुआ, तो 2030 तक बात हाथ से निकल जाएगी, क्योंकि तब तक पानी की मांग आपूर्ति से दुगनी हो चुकी होगी।

दिखावटी सख्ती

कुल मिलाकर, स्थिति भयावह है और बात कटते वनों, नव-वनीकरण में कोताही, अंधाधुंध निर्माण के लिए जल दोहन और शहरीकरण में जल स्रोतों के खत्म होते जाने के सियापे से आगे जा चुकी है। तमाम और कारण भी हैं। आज भी हम खेती के लिए पानी के तार्किक उपयोग वाले सिंचाई के उन्नत इंतज़ाम में पीछे हैं। अंधाधुंध शहरीकरण में उगते कंक्रीट के जंगलों ने पानी का पारंपरिक पुनर्भरण तो कम किया ही, पारंपरिक जल स्रोतों को खत्म ही कर दिया। इन्हें किसी भी सूरत में वापस लाना होगा। नदी-नालों व तालाबों में रसायन और कचरा डालने पर दिखावटी सख्ती हुई, लेकिन असल में कुछ नहीं हुआ। शहरी उपभोक्ता, कृषि व उद्योगों के बीच पानी के बंटवारे का असंतुलन भी हम दूर नहीं कर पाए। इस मामले में सरकारी तंत्र की नाकामी साफ है।

छोटे-छोटे उपाय

आंकड़े बताते हैं कि महज घरों के यूरीनल में हर बार फ्लश चलाने से बचा जाए या वाटर फ्री यूरीनल का प्रयोग किया जाए, तो सौ फ्लैट वाली एक इमारत हर दिन कम से कम सात हजार लीटर पानी बचा सकती है। कल्पना करें कि यह प्रयोग अगर हर शहर के हर अपार्टमेंट, दफ्तर और स्कूल में अनिवार्य हो जाए, तो नतीजे कितने सुखद होंगे। हर अपार्टमेंट यदि किचन और बाथरूम के पानी का संचय कर उसके शोधन और फिर से इस्तेमाल की व्यवस्था कर ले, वाटर फ्री यूरीनल का प्रयोग शर्त बन जाए, तो नतीजे अत्यंत नाटकीय होंगे।

सूख रहा भूजल

मानव निर्मित घटनाएं प्राकृतिक संसाधनों को चौपट कर रही हैं. पेड़ पौधे मिट रहे हैं, नदियां, तालाब, पोखर सूख रहे हैं और भूजल सूख रहा है। इस मामले में कुछ गतिविधियों पर खास ध्यान देने की जरूरत है।भारत में कोल्ड ड्रिंक के प्लांट जहां जहां भी लगे, वहां भूजल पर असर पड़ा। बड़ी कंपनियां देश में नियमों के अभाव का फायदा उठा रही हैं। केवल कोल्ड ड्रिंक ही नहीं, अन्य फैक्ट्रियों का भी भूजल पर बुरा असर पड़ता है। बेहिसाब खनन और खुदाई भी भूजल पर असर डाल रही है। इसी प्रकार से नदियों के जलस्तर में कमी या बदलाव से आसपास के इलाकों में भूजल पर असर पड़ता है।